THE TIMES OF INDIA

Date: 26-06-18

Delhi Disaster

Felling of trees for urban development is an outdated approach

TOI Editorials

In an example of callous urban planning, around 14,000 to 16,000 trees are being felled in Delhi to make way for government complexes and redevelopment projects. This has sparked outrage among residents, many of whom are protesting the tree felling exercise in the manner of the famous Chipko movement of the 1970s. As things stand the city suffers from poor air quality throughout the year. In summer it suffers from extraordinary heat waves due to the 'heat island' effect of dense urban clusters, and it is well known that trees reduce this effect. Delhi's massive tree felling exercise is thus a classic instance of unsustainable development, which even our schoolbooks warn against these days.

Authorities are supposed to plant ten new saplings for every tree cut. However, no such compensatory plantation has taken place at some of the redevelopment sites with the building authority, NBCC, simply stating that it has transferred the amount for compensatory afforestation. This is becoming a familiar story across the country. In Bengaluru, the proposed construction of a steel flyover – which would have led to the felling of more than 800 trees – was scrapped last year after residents opposed the project.

Similarly, in Mumbai last year environmentalists launched a movement to protect over 3,000 trees from a Mumbai Metro carshed. All of these show growing urbanisation is leading to a clash between development and environment. This calls for smart urban planning and adoption of modern approaches. To increase housing and commercial space, authorities can build upwards rather than horizontally. Better utilisation of existing government land reserves is in order. Modern urban planning preserves trees given their role in curbing air pollution, mitigating global warming, reducing ambient temperature and recharging ground water.

Date: 26-06-18

Transform Healthcare

Demand side solutions won't work when the problem is a supply constraint

TOI Editorials

During his 'mann ki baat' broadcast this Sunday, Prime Minister Narendra Modi highlighted the contribution of doctors to society. It was timely because, among other things, doctors are crucial to the success of the National Health Protection Mission aiming to cover 500 million people. Narratives around healthcare solutions in India focus on the demand side, with emphasis on insurance and price controls. However, this hasn't yielded satisfactory results because it cannot offset shortages on the supply side, particularly doctors and hospitals. Healthcare must reorient itself to address supply side challenges.

We have seen in recent times a politically promoted populist backlash against doctors and hospitals, as when the Delhi government closed a hospital for alleged lapses. This was a disproportionately severe move that denied healthcare to many. The trick here is to develop sophisticated and light touch regulation of healthcare which doesn't inhibit innovation and expansion in the name of curbing malpractices. Price controls, for instance, can create shortages, shortcuts on quality or overcharging in other areas that are equally necessary. They will exacerbate rather than solve the supply side problem. Encouraging transparency and competition, on the other hand, will bring down prices holistically while boosting India's medical tourism sector, a potential job spinner.

Not only is there a shortage of doctors in India, they rarely venture out of urban areas. This dimension influences India's disproportionately high out-of-pocket expense on healthcare of more than 60%. The primary cause for this shortage is the disappointing performance of Medical Council of India which has exercised control over licensing of doctors and their ambit. Recognising this lacuna, government has introduced a bill to annul MCI, free up medical education from stifling controls and also introduce an exit exam at the undergraduate level. However, one supply side dimension which has been neglected is a pathway for experienced nurses to shoulder more responsibility for providing care. India needs to use its cadre of experienced nurses to offset supply-side shortages.

Moreover, gaps in rural India can be made good only by government. The national health policy aims to gradually increase healthcare spending to 2.5% of GDP. Most of the additional spending needs to be directed to raising healthcare provision in rural areas as well as for underserved sections of the urban populace. Healthcare, like other areas, needs a lot more options arising from enhanced supply and competition.

राष्ट्रीय सहारा

Date: 25-06-18

सामाजिक तंत्र को समझना होगा

माशा

इन दिनों केंद्र सरकार मैला ढोने वालों की **गिनती** कर रही है। देश के 121 जिलों में इनकी **संख्या** 53,236 है। यह पहले चरण की गिनती है जिसमें सिर्फ 12 **राज्यों** को शामिल किया गया है। बाकी कई राज्यों ने इस अध्ययन में शामिल होना मंजूर नहीं किया है। वैसे इस चरण में उन लोगों की गिनती की गई है जो मैला और पिट **लैट्रिन** साफ करते हैं। सैप्टिक टैंकों को साफ करने वालों की गिनती अभी की ही नहीं गई है। अगले चरण में इनकी **गिनती** होगी। इनके साथ सीवर

और रेलवे ट्रैक साफ करने वालों को भी गिना जाएगा। तो, पूरी गिनती हुई भी नहीं है और बताया जा रहा है कि पिछले साल की तुलना में मैला ढोने वालों की संख्या चार गुना बढ़ गई है। गिनती करने वाला एक अंतरमंत्रालयी कार्यबल है। इसलिए आप इन आंकड़ों पर भरोसा कर सकते हैं।

पर नीति-निर्माताओं पर भरोसा कैसे किया जाए? 2014 में स्वच्छ भारत मिशन के साथ यह दोहराया गया था कि 2019 तक देश को स्वच्छ बनाने के साथ-साथ मैला ढोने की प्रथा को भी समाप्त किया जाएगा। इसके लिए जरूरी यह था कि सभी राज्यों के शहरी क्षेत्रों में मैला ढोने वाले लोगों को चिह्नित किया जाए। उनकी जिंदगी बदली जाए। उनका पुनर्वास किया जाए। लेकिन क्या स्वच्छ शौचालयों से मैला ढोने की प्रथा खत्म हो सकती है? चूंकि सफाई कर्मचारी भी लगातार मानव मल ढोने का काम कर रहे हैं। नंगे हाथों से, बदबूदार गंदगी में धंसकर।

वैसे स्वच्छ भारत मिशन का पूरा दारोमदार खुले में शौच से मुक्ति है। लेकिन शौचालय को स्वच्छता से जोड़ना एक तरह का भ्रम पैदा करता है। जरूरी नहीं है कि सभी स्वच्छ शौचालयों की गंदगी पाइप के जरिए सीवेज उपचार संयंत्र में पहुंचे। अधिकतर मामलों में यह सैप्टिक टैंक में जमा होती रहती है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश के 24 करोड़ से अधिक शहरी और ग्रामीण घरों में से 22.2% घरों के स्वच्छ शौचालय सैप्टिक टैंकों से जुड़े हुए हैं, जबकि11.9% घर पाइप वाली सीवेज पणाली से। शहरी क्षेत्रों में 38.2% लैट्रिन सैप्टिक टैंकों से जुड़े हुए हैं, जबकि सिर्फ 12.6%लोग खुले में शौच करते हैं। हमारा सारा जोर खुले में शौच रोकने पर है, इन सैप्टिक टैंकों का क्या.. इन्हें कौन साफ करता है? यह काम सफाई कर्मचारी करते हैं। वह भी सीधे तौर पर नौकरियां नहीं करते। ज्यादातर निजी ठेकेदारों के लिए काम करते हैं। इन ठेकेदारों को सरकारी संस्थाएं खुद सफाई के काम के लिए आउटसोर्स करती हैं। सफाई कर्मचारियों की हालत खराब है। ये सुरक्षा उपकरणों के बिना सीवर-सैप्टिक टैंक में उतरते हैं और उसके बाद उनका क्या होता है-सभी जानते हैं। हर हफ्ते किसी न किसी सफाई कर्मचारी की मौत की खबर आती है। विषैली गैस में दम घुटने से कितनों की मौत हो जाती है- एक दूसरे को बचाने में मौत के शिकार हो जाते हैं। नियमित कर्मचारी न होने के कारण उन्हें इसका मुआवजा तक नहीं मिलता। ये सफाई कर्मचारी मैला ढोने वालों से कम हैं?

1994-95 में राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में कहा था कि केंद्र सरकार को सफाई कर्मचारियों के शोषण को बंद करने के लिए ठेकेदारी प्रथा को समाप्त करना चाहिए। 1995 में ही सर्वोच्च न्यायालय ने भी कहा था कि सरकारी उपक्रमों को ठेके पर काम करवाने की परंपरा को बंद करना चाहिए-चूंकि लोगों को सीधे नौकरियों पर भी रखा जा सकता है। तब कहा गया था कि पैसा बचाने के लिए ठेकेदारी पर लोगों से काम करवाया जाता है जो कि शोषण का एक बहुत बड़ा कारण बनता है। इसीलिए केंद्रीय अधिसूचना के जरिए इस प्रथा को प्रतिबंधित करने की बात कही गई थी। लेकिन स्थिति जस की तस है। मैला ढोने की प्रथा को समाप्त करने का पहला कानून देश में 1993 में पारित हुआ था और फिर 2013 में इससे संबंधित दूसरा कानून अधिनियमित हुआ। लेकिन दुखद यह है कि इस कानून के तहत अब तक एक आदमी को भी सजा नहीं मिली।

अधिकतर सफाई कर्मचारी एससी के लोग हैं जिनमें महिलाएं बड़ी संख्या में हैं। ऊंची जातियों ने परंपरागत रूप से उन्हें मानव मल को हाथों से साफ करने के लिए मजबूर किया था। अब भी उन्हीं शोषित जातियों को ठेके पर सीवेज और नालों की सफाई के लिए उतरना पड़ता है-बिना किसी सुरक्षा उपकरण के। इसीलिए जरूरी यह है कि सबसे पहले इस क्षेत्र में मौजूद ठेकेदारी प्रथा पर पाबंदी लगाई जाए। साथ ही मौजूदा मलीय कीचड़ के प्रबंधन की पणाली में परिवर्तन किया

जाए। इसके अलावा, नालों और सीवेज लाइनों की सफाई का काम मशीनीकृत हो सरकार ने यही वादा किया था। लेकिन अभी तो गिनती का काम भी पूरा नहीं हुआ है। मैला ढोने वालों के सिर से यह बोझ पता नहीं कब उतरेगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 25-06-18

खुल रहे हैं भारतीय बाजार की संभावनाओं के द्वार

अमीर उल्लाह खान, डेवलपमेंट इकोनॉमिस्ट

भारत के विशाल मध्य वर्ग में लंबे समय से जो असीम कारोबारी संभावनाएं नजर आ रही थीं, उसे सच साबित करने वाले निवेश की बाट बाजार एक अरसे से जोह रहा था। ब्रुंकग्स के साथ-साथ कुछ अन्य कंपनियों ने यह अनुमान लगाया था कि भारत का यह वर्ग ही दुनिया के इस तरह के सबसे बड़े वर्ग के रूप में उभरकर सामने आएगा। भारत की आबादी का मौजूदा स्वरूप भी इसी ओर इशारा कर रहा था। लेकिन कई कारणों से चीजें आगे बढ़ती हुई नहीं दिख रही थीं। लेकिन ई-कॉमर्स की दुनिया में पिछले दिनों जो बदलाव आए हैं, वे बता रहे हैं कि चीजें इस दिशा में तेजी से बढ़ने लग गई हैं। भले ही इसमें जरूरत से ज्यादा वक्त लग गया, लेकिन इस क्षेत्र में भारी-भरकम निवेश और रोजगार के अवसरों के लिए अब जमीन तैयार हो चुकी है।

यह एक ऐसा क्षेत्र है, जो लॉजिस्टिक्स, परियोजना प्रबंधन, सामान डिलीवरी, गोदामों और बैक ऑफिस के लिए बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार दे सकता है। अमेजन ने भारत के अपने लॉजिस्टिक्स विभाग में करीब 8,000 लोगों की भर्ती की जो घोषणा की है, उसे हम इसकी शुरुआत मान सकते हैं। ठीक यहीं पर हम ऐसे नए नियम-कायदों को भी लागू किए जाने की उम्मीद कर सकते हैं, जिनकी बदौलत 'ई-टेल' बिजनेस में एक बड़ा सेगमेंट उभरेगा, बशर्ते कि भारत में 'ई-फार्मेसी' पर सरल और स्पष्ट नियम-कानून बनें। यह भी सच है कि भारत में कई तरह की बाधाएं कम हुई हैं।

लंबे समय से हम दूर-दराज में रहने वाले लोगों को वस्तुओं और सेवाओं की डिलीवरी में आने वाली समस्याओं की बात करते रहे हैं। बड़ी संख्या में केस स्टडीज से भी यह तथ्य सामने आया है कि भारत के छोटे शहरों और गांवों में बुनियादी ढांचे और गोदामों की सक्षम व्यवस्था न होने के कारण कंपनियों और ग्राहकों को किस तरह से भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। हालांकि, ई-कॉमर्स में बड़े पैमाने पर निवेश होने की बदौलत इस क्षेत्र में अब व्यापक बदलाव बाकायदा नजर आने लगा है, क्योंकि अमेजन सहित कई कंपनियां अब दूसरी व तीसरी श्रेणी के शहरों में भी अपने उत्पादों की सफल डिलीवरी करने लगी हैं। उधर, किराने के सामान, फलों और सब्जियों से जुड़ी आर्पूित शृंखलाओं यानी सप्लाई चेन के अव्यवस्थित होने के चलते भी भारी बर्बादी की चर्चा होती रहती है। लचर लॉजिस्टिक्स नेटवर्क के कारण लगभग 50

फीसदी फल व सब्जियां बर्बाद हो जाती हैं। फलों और सब्जियों की इस बर्बादी के कारण पिछले साल कृषि क्षेत्र को लगभग 12 अरब डॉलर का भारी नुकसान उठाना पड़ा था। इसलिए नए निवेश से सप्लाई चेन को इस तरह विस्तृत और आधुनिक बनाया जा सकता है कि यह समस्या हमेशा के लिए खत्म हो जाए।

यहां पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अब भी देश की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी ऑफलाइन ही खरीदारी करती है, लेकिन जैसे ही इंटरनेट की पहुंच बेहतर और व्यापक होगी, इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या भी काफी तेजी से बढेगी। इससे रोजाना महज दस लाख ई-कॉमर्स लेन-देन (ट्रांजेक्शन) का मामूली मौजूदा आंकड़ा भी बेहतर होगा ही। पिछले साल करीब 17 अरब डॉलर की ऑनलाइन बिक्री हुई, जो कुल बाजार का एक छोटा-सा अंश है। लेकिन आगे की संभावनाएं बहुत ज्यादा हैं।

ऐसी स्थिति में सख्त जरूरत इस बात की है कि बड़े पैमाने पर बैंकिंग प्रणाली और पेमेंट गेटवे में भरोसा कायम किया जाए। इससे हम वर्तमान स्थिति में बड़ा सुधार देखेंगे। अभी 70 फीसदी आबादी के पास बैंक खाता होने के बावजूद 75 फीसदी ई-कॉमर्स सौदे बेकार समझे जाने वाले 'सीओडी (कैश ऑन डिलीवरी) लेन-देन' के रूप में होते हैं। दोषपूर्ण या खराब पीओएस मशीनों, घटिया कनेक्टिविटी और ऑनलाइन वित्तीय लेन-देन पर भरोसे की कमी के कारण ही यह अनचाही स्थिति देखने को मिल रही है। हालांकि, नई उम्मीदें जगाने वाली एक अच्छी बात यह है कि देश में ई-कॉमर्स की पैठ मजबूत करने वाले सौदे लगातार हो रहे हैं और भारी मात्रा में निवेश भी लगातार आ रहा है।

Date:25-06-18

लोक सेवा आयोगों में बदलाव का समय

मोहन भंडारी, पूर्व अध्यक्ष, उत्तराखंड लोक सेवा आयोग

देश में केंद्र और सभी राज्यों का अपना-अपना लोक सेवा आयोग है। इन सबका गठन भारत सरकार अधिनियम, 1935 से हुआ है। इनके गठन के पीछे एक ऐसी व्यवस्था बनाने की भावना थी, जो राजनीतिक प्रभाव, भाई-भतीजावाद या किसी भी तरह के दबाव या पक्षपात से मुक्त होकर योग्यता के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं के लिए पेशेवरों के चयन की राह खोले। किसी की निजी पसंद-नापसंद की कोई भूमिका चयन प्रक्रिया में नहीं थी। सुखद आश्चर्य है कि लोक सेवा आयोग के गठन के पीछे जो सिद्धांत व लक्ष्य तय किए गए थे, वे आज भी अपनी उसी भावना के साथ कायम हैं।

यह समझना होगा कि राज्य स्तर पर संसाधनों का लगभग 69 फीसदी हिस्सा कर्मचारियों, उनके वेतन और इससे संबंधित मदों में खर्च होता है। राज्यों के लिए मानव संसाधन सबसे महत्वपूर्ण निधि है। लिहाजा भारत को आज एक खास लाभ हासिल है कि यहां की बड़ी आबादी नौजवानों की है। ऐसे में, यह उचित समय है कि हम इस लाभांश का बेहतर इस्तेमाल करें। यह इसलिए भी जरूरी हो जाता है कि अगले 25-30 वर्षों तक भारत को इस युवा आबादी का फायदा मिलेगा। राज्यों में लोक सेवा आयोगों के माध्यम से भर्ती होने वाले कर्मचारी बेहतर शासन-व्यवस्था सुनिश्चित करके युवा-शक्ति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए केंद्र व राज्य सरकारों को संघ व राज्य

स्तरीय लोक सेवा आयोगों को समान महत्व देना चाहिए। चूंकि हमारी अर्थव्यवस्था तेजी से आगे बढ़ रही है, इसलिए यही समय है, जब युवा-शक्ति के बेहतर इस्तेमाल की दिशा में कदम बढ़ाए जाएं। वरना, जिस युवा आबादी को हम अपना जनसांख्यिकीय लाभांश मान रहे हैं, वही हमारे लिए आपदा साबित हो सकती है।

इसमें कई चुनौतियां हैं। वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने दुनिया को एक वैश्विक गांव में तब्दील कर दिया है। इससे सार्वजनिक सेवाओं की भूमिका और प्रासंगिकता में भी उल्लेखनीय बदलाव हुए हैं। ब्रिटेन आज अपने सिविल सर्विस कमीशन के जरिए सार्वजनिक सेवाओं से जुड़े महज पांच फीसदी पदों पर नियुक्ति करता है। कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया भी पूरी तरह से या फिर आंशिक तौर पर सार्वजनिक सेवाओं की विकेंद्रित नियुक्ति (विभागों या मंत्रालयों द्वारा अलग-अलग चयन करना) करने लगे हैं। दुनिया के कई हिस्सों में ऐसी नियुक्ति प्रक्रिया करीब-करीब निजी हाथों को सौंपी जा चुकी है। ज्यादातर राष्ट्रमंडल देशों में भी सरकारें इस नियुक्ति के मूल कार्य से पीछे हट गई हैं। ऐसे में, यह बहस का विषय है कि सिविल सेवाओं के शीर्ष स्तर पर नियुक्ति के लिए संघ और राज्यों के लोक सेवा आयोगों की भूमिका क्या अब भी मुख्य भर्ती एजेंसी के रूप में बनी रहनी चाहिए?

यह सही है कि भारत का सिविल और प्रशासनिक चरित्र बाकी दुनिया से बिल्कुल अलग है, पर यही उचित समय होगा, जब हम पुराने मॉडल को दुरुस्त करें, ताकि वे सार्वजनिक सेवाओं के अनुकूल बन सकें। इसके लिए इसके अंदर सुधार करना होगा। इसका एक हिस्सा परीक्षा व्यवस्था में सुधार भी है, जिसे ई-गवर्नेंस के उद्देश्यों व जरूरतों के मुताबिक ढालना होगा।

दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारा संविधान इन आयोगों के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की बात तो कहता है, पर इनकी चयन प्रक्रिया पर मौन है। मौजूदा व्यवस्था में राज्य लोक सेवा आयोगों के आधे से अधिक सदस्यों का चयन पूरी तरह से कार्यपालिका के विवेकाधिकार पर निर्भर है। जबकि अध्यक्ष के मामले में एक 'सर्च कमेटी' का गठन किया जाता है, जो तीन उपयुक्त लोगों के नाम 'शॉर्ट लिस्ट' करती है। जाहिर है, सदस्यों के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। इसमें निवर्तमान अध्यक्ष की सलाह अनिवार्य होनी चाहिए। इतना ही नहीं, ऐसी नियुक्तियां संविधान के मुताबिक योग्य व्यक्ति की होनी चाहिए, मगर वास्तव में ऐसा नहीं होता। अपने लोगों की नियुक्ति के लिए राजनेताओं व नौकरशाहों के तमाम दबाव काम करते हैं, जिसके घातक नतीजे निकलते हैं। सदस्य अपने उत्तरदायित्व, पेशेवर रुख और विश्वसनीयता से समझौता करते हैं। पंजाब, महाराष्ट्र, झारखंड, बिहार जैसे राज्यों के लोक सेवा आयोगों के बाद अब उत्तर प्रदेश का मामला हमारे सामने है।

लोक सेवा आयोगों के कामकाज में केंद्र और राज्य सरकारों ने अपनी दखल बढ़ा दी है। राज्य सरकार आयोगों के माध्यम से गजेटेड पोस्ट की भर्ती के लिए नियमित अधिसूचनाएं जारी न कर खुद चयन कर रही हैं। यह भी देखा गया है कि केंद्र व राज्य सरकारें और कार्यपालिका भी संबंधित लोक सेवा आयोगों के बारे में गंभीर नहीं हैं, क्योंकि वे उन्हें संविधान प्रदत्त एक स्वायत्त व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि बतौर सहायक देखती हैं। रही-सही कसर इन्फ्रास्ट्रक्चर या स्टाफ की कमी पूरी कर देती है, जिसके लिए आयोगों को पर्याप्त बजट नहीं मिलता। साफ है, राज्य लोक सेवा आयोगों को सांविधानिक प्रावधानों के तहत वित्तीय स्वायत्तता तो मिलनी ही चाहिए, विधायिका द्वारा बजट की मंजूरी मिलने के बाद उन्हें अपने बजट के इस्तेमाल का पूरा अधिकार भी मिलना चाहिए।

सच यह भी है कि अदालती मुकदमों ने भी आयोगों के कामकाज को प्रभावित किया है; फिर चाहे यह परीक्षा को रोकने के लिए हो या फिर आयोग के **सांविधानिक** कामकाज के संदर्भ में। राज्यों की विभिन्न **परीक्षाओं** में सेवा, वेतन, भत्ते या प्रक्रियाओं को लेकर भी समानता नहीं है। आलम यह है कि संघ लोक सेवा आयोग के **सदस्य** 65 साल की उम्र तक अपनी सेवा दे सकते हैं, जबकि राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य 62 वर्ष की उम्र तक। इसी तरह, कुछ राज्य क्षेत्रीय विषयों को अनिवार्य विषय की मान्यता दे चुके हैं। और भी कई विसंगतियां हैं। मगर मूल मसला यह है कि आयोगों में अगर किसी सुधार की जरूरत होती है, तो वह संविधान में संशोधन के बाद ही संभव हो पाता है। और यह कोई आसान काम नहीं, क्योंकि इससे राजनीतिक दलों के हित नहीं सधते। सवाल बना हुआ है कि क्या हमें लोक सेवा आयोगों के कामकाज का मौजूदा स्वरूप बरकरार रखना चाहिए? जाहिर है, इस सवाल पर एक राष्ट्रीय बहस कराने और फिर उसे संसद के पटल पर रखने का वक्त आ गया है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 25-06-18

No Zero Sum Game

As Nepal walks tightrope between India and China, Delhi must focus on delivering on its own commitments to Kathmandu.

Editorial

The last time Nepal Prime Minister KP Sharma Oli visited Beijing was in February 2016, and the circumstances of that visit and the one last week could not have been more different. Four months after he had been elected to his first stint as Prime Minister, his country continued to reel from a bruising economic blockade at the India-Nepal border that New Delhi did nothing to ease. Oli responded by hitting where it hurt. He signed a wide-ranging transit and transport agreement with China to reduce dependence on India, including on rail connectivity, and for Nepal's access to a Chinese port for movement of goods. Within months, his government lost the support of its coalition partners and he had to resign. After his re-election this year with a huge majority, India-Nepal relations have exhibited a new pragmatism. There is an evident attempt in both capitals to steer clear of zero-sum formulations between Nepal and its two big neighbours. Oli's first visit abroad after becoming Prime Minister for a second time was to Delhi, though India-baiting played a big role in his return to power. Prime Minister Narendra Modi reciprocated by visiting Nepal in May, his third visit to the country. It speaks to where bilateral relations are now that Oli's 5-day official visit to Beijing last week has not set off panic in India. Oli has himself stressed that his government wants to intensify relations with both countries.

During Oli's visit, Nepal and China have concluded some eight agreements, including a Memorandum of Understanding on "co-operation for railway connectivity". The joint statement said both sides "underscored it as the most significant initiative in the history of bilateral cooperation and believed that it would herald a new era of cross-border connectivity between the two countries". According to reports,

the rail link will connect Gyirong, a trading port in the city of Xigaze in Tibet with Kathmandu, but not up to the Indian border as was feared in India. Under another MoU on "energy co-operation", both sides have agreed "to study the possibility" of building oil storage facilities at sites identified by Nepal, and China will help research oil and gas resources in Nepal. China has signalled an interest in setting up three North-South economic corridors in Nepal. Nepal wants China to set up cross-border power transmission lines. The setting up of the commercially operated cross-border fibre optic lines is also referenced in the joint statement. Most of all, though, Oli made the case for Chinese investment in Nepal. From the joint statement, it does seem as if the 2016 agreement between the two countries, the one that spooked Delhi, has not made the kind of rapid progress that both sides had appeared to want at the time.

Instead of agonising over what China is doing in Nepal, Delhi would do well to fast-track the delivery on its own commitments to its Himalayan neighbour. It is telling that India and Nepal finalised a long pending agreement on opening more air routes into the country for international flights over Indian air space just three days before Oli embarked on his Beijing visit. India signed this year its own "path breaking" agreement on rail connectivity from Raxaul to Kathmandu, one on inland waterways for freight movement, and another on co-operation in agriculture. During his visit, Modi inaugurated jointly with Oli, Arun III, the 900 MW hydropower project in north-eastern Nepal, which India will fund to the tune of $1.5 billion. India has also begun work on a petroleum pipeline. Sandwiched between two big countries, it is natural that Nepal should seek to maximise its geography to its own advantage. To that end, it has a tough balancing act to do, and India — no stranger to tightrope walks itself — should be able to appreciate that.

THE HINDU

Date: 25-06-18

For Nutrition Security

India remains lacking in the commitment to tackle undernourishment.

EDITORIAL

The UN's State of Food Security and Nutrition in the World report for 2017 has important pointers to achieve nutrition policy reform. At the global level, the five agencies that together produced the assessment found that the gains achieved on food security and better nutrition since the turn of the century may be at risk. Although absolute numbers of people facing hunger and poor nutrition have always been high, there was a reduction in the rate of undernourishment since the year 2000. That has slowed from 2013, registering a worrying increase in 2016. The estimate of 815 million people enduring chronic food deprivation in 2016, compared to 775 million in 2014, is depressing in itself, but more important is the finding that the deprivation is even greater among people who live in regions affected by conflict and the extreme effects of climate change. In a confounding finding, though, the report says that child under-nutrition rates continue to drop, although one in four children is still affected by stunting. These are averages and do not reflect the disparities among regions, within countries and between States. Yet, the impact of the economic downturn, many violent conflicts, fall in commodity export revenues, and failure of agriculture owing to drought and floods are all making food scarce and expensive for many.

They represent a setback to all countries trying to meet the Sustainable Development Goal on ending hunger and achieving food security and improved nutrition.

India's efforts at improving access to food and good nutrition are led by the National Food Security Act. There are special nutritional schemes for women and children operated through the States. In spite of such interventions, 14.5% of the population suffers from undernourishment, going by the UN's assessment for 2014-16. At the national level, 53% of women are anaemic, Health Ministry data show. What is more, the Centre recently said it had received only 3,888 complaints on the public distribution system (PDS) over a five-year period. All this shows that the Centre and State governments are woefully short on the commitment to end undernourishment. Institutions such as the State Food Commissions have not made a big difference either. Distributing nutritious food as a public health measure is still not a political imperative, while ill-conceived policies are making it difficult for many to do this. The report on nutritional deficiency should serve as an opportunity to evaluate the role played by the PDS in bringing about dietary diversity for those relying on subsidised food. In a report issued two years ago on the role played by rations in shaping household and nutritional security, the NITI Aayog found that families below the poverty line consumed more cereals and less milk compared to the affluent. Complementing rice and wheat with more nutritious food items should be the goal.